International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 458-461

ह्यूम और कारणकार्यसम्बन्ध

डॉ० अनन्त कुमार यादव

अध्यक्ष, दर्शन विभाग, इन्स्टीटयूट ऑफ आरिन्टल फिलोसोफी, वृन्दावन, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

कारण कार्य सम्बन्ध मानव व्यवहार एवं दर्शन जगत का एक अतयन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है और इस विचार या सिद्धान्त के अभाव में हमारा कोई भी मानवीय व्यवहार सम्भंव नहीं हो सकता। सामान्यतौर पर कारण और कार्य के बीच में अनिवार्य सम्बन्ध माना जाता है फिर भी इसके स्वरूप के सन्दर्भ में अनेक विरोध व वैषम्य देखने को मिलता है। ध्यातव्य है कि ह्यूम ने अपनी दोनों महत्वपूर्ण पुस्तकों –'ट्रिटाइज ऑफ ह्यूमैन नेचर' तथा 'ऐन ऐन्क्वायरी कन्सरनिंग ह्यूमन अन्डरस्टैंडिग'– में कारण – कार्य सम्बन्ध का विस्तृत विवेचन किया है। उनका मतहै कि यह सम्बन्ध बुद्धि अथवा तर्कना पर आधारित न होकर मूलतः हमारे अनुभव पर ही आधारित है। कारण–कार्य सम्बन्ध पर विचार करते हुए उन्होनें सर्वप्रथम यह प्रश्न उठाया है कि हमें कारणता का प्रत्यय किस संस्कार से प्राप्त होता है। क्या हम उन वस्तुओं से कारणता का प्रत्यय प्राप्त कर सकते हैं जिन्हे हम 'कारण' कहते हैं ? इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हुए ह्यूम ने कहा है कि 'कारण' मानी जाने वाली वस्तुओं में कोई ऐसा सामान्य गुण नहीं है जिसके आधार पर हम उनसे कारणता का प्रत्यय प्राप्त कर सकें। दूसरे शब्दों में, जिन वस्तुओं को हम कारण मानते हैं उनसे हम तर्क अथवा अनुभव द्वारा कारणता का प्रत्यय प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार ह्यूम के विचार में कारणता का प्रत्यय 'वस्तुगत' नहीं है। उनका कथन है कि "कारणता का प्रत्यय हमें वस्तुओं में विद्यमान किसी सम्बन्ध से ही प्राप्त हो सकता है।"[1] यहां स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि वस्तुओं में विद्यमान किस सम्बन्ध से हम कारणता का प्रत्यय प्राप्त कर सकते है ? इस प्रश्न के उत्तर में ह्यूम ने तीन सम्बन्धों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित हैं – (1) दैशिक दृष्टि से वस्तुओं का सामीप्य, (2) कालिक दृष्टि से वस्तुओं में विद्यमान पौर्वापर्य का क्रम तथा (3) अनिवार्यता का सम्बन्ध। अब हम कारणता के प्रत्यय को उत्पन्न करने वाले इन तीनों सम्बन्धों के विषय में ह्यूम के मत पर विचार करेंगे।

जब हम किन्हीं दो वस्तुओं या घटनाओं में से एक को कारण तथा दूसरी को कार्य मानते हैं तो वे सामान्यतः एक दूसरे के समीप होती हैं, अतः कारण और कार्य में प्रथम सम्बन्ध सामीप्य का सम्बन्ध है। इसका अर्थ यह है कि दैशिक दृष्टि से कारण और कार्य सामान्यतः समीपस्थ होते हैं। यह सामीप्य
प्रत्यक्ष अथवा व्यवधानरहित भी हो सकता है और परोक्ष या व्यवधानयुक्त भी। जब एक लुढ़कती हुई गेंद दूसरी स्थिर गेंद को आगे धकेल देती है तो इन दोनों गेंदों में व्यवधानरहित सामीप्य का सम्बन्ध स्पष्ट है। जब कोई घटना 'क' किसी दूसरी घटना 'घ' को प्रत्यक्षतः उत्पन्न न करके कुछ अन्य घटनाओं – 'ख', 'ग' आदि – के माध्यम से उत्पन्न करती है तो प्रथम और अंतिम घटना में परोक्ष अथवा व्यवधानयुक्त सामीप्य होता है। इस प्रकार के सामीप्य के अंतर्गत मध्यवर्ती घटनाओं की एक श्रृंखला होती है जो प्रथम घटना और अंतिम घटना को कारण – कार्य के रूप में परस्पर सम्बद्ध करती है। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में कार्य कारण से प्रतयक्षतः सम्बद्ध न होते हुए भी उससे परोक्षतः अवश्य सम्बद्ध होता है। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ह्यूम प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दैशिक सामीप्य को कारण – कार्य के सम्बन्ध के लिए अनिवार्य नहीं मानते। उनका कथन है कि कोई दो वस्तुएँ एक – दूसरे के निकट हो सकती हैं, किन्तु इसका अर्थ नहीं है कि वे दोनों अनिवार्यतः कारण – कार्य के रूप में सम्बद्ध होगी। उदाहरणार्थ हमारे मनोवेगों तथा विचारों से कारण – कार्य का सम्बन्ध हो सकता, परन्तु उनमें किसी प्रकार का दैशिक सामीप्य नहीं हो सकता, क्योंकि अभौतिक होने के कारण वे स्थान नहीं घेरते। अपने इसी मत को स्पष्ट करते हुए ह्यूम ने लिखा है कि " नैतिक विचार को मनोवेग के दाएं अथवा बाएं नही रखा जा सकता, न ही कोई गंध अथवा ध्वनि गोल या चौकोर हो सकती है।[2] इस प्रकार ह्यूम के मतानुसार सामान्यतः कारण – कार्य में दैशिक सामीप्य का सम्बन्ध होते हुए भी उसके लिए यह सम्बन्ध अनिवार्य नहीं है।

कारण और कार्य में दूसरा सम्बन्ध कालिक नियतक्रम अथवा पौर्वापर्यका सम्बन्ध है। जब कोई कारण किसी कार्य को उत्पन्न करता है तो वह सदैव और अनिवार्यतः उस कार्य का पूर्ववर्ती होता है। ह्यूम ने स्पष्ट कहा है कि काल की दृष्टि से कारण का अपने कार्य से पहले आना अनिवार्य है। हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि कारण अपने कार्य का सहवर्ती न होकर सदा पूर्ववर्ती ही होता है। जब एक लुढ़कती हुई गेंद दूसरी स्थिर गेंद से टकराकर उसमें गति उत्पन्न करती है तो पहली गेंद में दूसरे गेंद की अपेक्षा पहले गति उत्पन्न होती है। इस प्रकार कालिक नियत क्रम अथवा पौर्वापर्य का सम्बन्ध कारण – कार्य के सम्बन्ध के लिए आवश्यक है। परन्तु ह्यूम के विचार में कारण – कार्य के सम्बन्ध को समझने के लिए पौर्वापर्य का यह सम्बन्ध ही पर्याप्त नहीं है। कोई दो घटनाएं एक दूसरे के बाद घटित हो सकती हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे दोनों अनिवार्यतः कारण – कार्य के रूप में सम्बद्ध होंगी। उदाहरणार्थ स्टेशन पर पहुँचने वाली किन्हीं दो गाड़ियों का समय इस प्रकार नियत किया जा सकता है कि एक गाड़ी सदैव दूसरी गाड़ी से पहले पहुंचे। परन्तु ऐसी स्थिति में सदैव पहले पहुंचने वाली गाड़ी को दूसरी गाड़ी का कारण नहीं माना जा सकता। इस प्रकार यह संभव है कि कोई दो घटनाऐं सदैव एक दूसरे के पश्चात् घटित होते हुए भी कारण कार्य के रूप में सम्बन्ध न हो। इसी कारण ह्यूम नियत पौवापर्य के सम्बन्ध को भी कारण – कार्य के सम्बन्ध के लिए दैशिक सामीप्य के समान ही अनिवार्य नहीं मानते। उनके मतानुसार " यह सम्भव है कि कोई वस्तु किसी अन्य वस्तु के समीप तथा पूर्ववर्ती होते हुए भी उसका कारण न हो। इन दोनों में एक अनिवार्य सम्बन्ध का होना आवश्यक है जो पूर्ववर्णित दोनों सम्बन्धों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।[3] अब हम इस अनिवार्य सम्बन्ध के विषय में ह्यूम के मत पर विचार करेगें।

ऊपर दिये गये उद्धरण से यह स्पष्ट है कि ह्यूम कारण और कार्य में अनिवार्य सम्बन्ध स्वीकार करते हैं – अर्थात् वे यह मानते हैं कि एक विशेष कारण एक विशेष कार्य को ही सदा एवं अनिवार्यतः उत्पन्न करता है। ऐसी स्थिति में उनके समक्ष मुख्य प्रश्न यह है

कि हमें कारण – कार्य के इस अनिवार्य सम्बन्ध का ज्ञान किस प्रकार होता है। दूसरे शब्दों में , कारण और कार्य में हम जो अनिवार्यता देखते हैं उसका प्रत्यय हमें किस संस्कार से प्राप्त होता है ? इस प्रश्न पर ह्यूम ने बहुत विस्तारपूर्वक विचार किया है। उनका मत है कि अनिवार्यता का यह प्रत्यय हमें किसी संवेदन सम्बन्धी संस्कार से प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि कारण और कार्य मानी जाने वाली वस्तुओं में ऐसा कोई गुण नहीं है जिसके द्वारा हमें उनके अनिवार्य सम्बन्ध का ज्ञान हो सके। हम कारण और कार्य के सामीप्य तथा पौर्वापर्य को ही प्रत्यक्षतः जान सकते हैं, किन्तु इस ज्ञान के आधार पर हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि उन दोनों में कोई अनिवार्य सम्बन्ध है। जब हम किन्हीं दो वस्तुओ को प्रथम बार कारण और कार्य के रूप में देखते है तो हमें इस इन्द्रिय – प्रत्यक्ष के आधार पर उन दोनों में अनिवार्य सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होता, अर्थात् हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि उनमें से एक विशेष वस्तु दूसरी विशेष वस्तु को सदैव और अनिवार्यतः उत्पन्न करेगी। इस प्रकार ह्यूम के अनुसार इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा हम कारण और कार्य में अनिवार्य सम्बन्ध का ज्ञान कभी प्राप्त नहीं कर सकते। क्या हम अनुचिंतन के किसी संस्कार से कारण और कार्य के अनिवार्य सम्बन्ध का प्रत्यय प्राप्त कर सकते हैं? इस प्रश्न का भी ह्यूम ने नकारात्मक उत्तर ही दिया है। उनका मत है कि अनिवार्य सम्बन्ध के प्रत्यय को उत्पन्न करने वाला अनुचिंतन का कोई संस्कार हमारे मन में नहीं है। 'हम केवल अनुभव से ही अपनी इच्छाशक्ति के प्रभाव को जान सकते हैं और अनुभव हमें यह बताता है कि एक घटना के पश्चात् दूसरी घटना किस प्रकार निरंतर घटित होती है। इन घटनाओं को अपृथकनीय बनाने वाले किसी अनिवार्य सम्बन्ध का हमें इस अनुभव द्वारा ज्ञान नहीं होता । ..... इससे हम निश्चयपूर्वक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अनिवार्य सम्बनध का प्रत्यय हमारे मन में विद्यमान किसी भावना अथवा चेतना की अनुकृति नहीं है।[4] इस प्रकार ह्यूम के मतानुसार कारण तथा कार्य में अनिवार्य सम्बन्ध का प्रत्यय न तो हमें किसी संवेदन सम्बन्धी संस्कार से प्राप्त हो सकता है और न अनुचिंतन सम्बन्धी संस्कार से।

अतः स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि हमें कारण और कार्य में अनिवार्य सम्बन्ध क्यों प्रतीत होता है। हम यह क्यों मानते हैं कि कोई विशेष कारण किसी विशेष कार्य को सदैव तथा अनिवार्यतः उत्पन्न करता है और भविष्य में भी

करेगा ? इस प्रश्न के उत्तर में ह्यूम का कथन है कि केवल प्रथा अथवा आदत के कारण ही हम कारण और कार्य में अनिवार्य सम्बन्ध का अनुभव करते हैं। जब हम किन्हीं दो घटनाओं को बार – बार एक दूसरे के पश्चात् घटित होते देखते है तो हमारा मन उन घटनाओं में सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और इसी कारण उनमें से किसी एक घटना को घटित होते देखकर हम तुरन्त उससे सम्बन्ध दूसरी घटना की प्रत्याशा करने लगते है। उदाहरणार्थ – अग्नि को छूने के पश्चात् हमनें सदैव उष्णता का अनुभव किया है और बर्फ को छूने के पश्चात शीतलता का। इस पूर्वानुभव के फलस्वरूप हमारें मन में अग्नि के साथ उष्णता का और बर्फ के साथ शीतलता का सम्बन्ध स्थापित हो गया है। यही कारण है कि हम जब भी अग्नि अथवा बर्फ को देखते है तो हम तुरन्त उष्णता और शीतलता की आशा करने लगते है। वस्तुतः पूर्वानुभव द्वारा उत्पत्र अपनी इस आदत के कारण ही हमें अग्नि और उष्णता में तथा बर्फ और शीतलता में अनिवार्य सम्बन्ध प्रतीत होता है।पूर्वानुभव के अभाव में केवल इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा हम इस अनिवार्य सम्बन्ध को कभी नही जान सकतें और न हम इसे तर्क द्वारा ही प्रमाणित ही कर सकते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ह्यूम कारण और कार्य के सम्बन्ध को वस्तुगत न मान कर, अनुभवजन्य 'आदत' के परिणामस्वरूप उत्पत्र आत्मगत सम्बन्ध मात्र मानते है। यहॉ यह स्मरण रखना चाहिए कि अनिवार्य सम्बन्ध के प्रत्यय के विषय में उनकी यह व्याख्या कारण–कार्य के रूप में सम्बद्ध भौतिक वस्तुओं तथा मानसिक प्रवृत्तियों दोनो पर समान रूप से लागू होती है। इसका अभिप्राय यह है कि इच्छा और उसके प्रभावों में हमें जो अनिवार्य सम्बन्ध प्रतीत होता है वह भी वास्तव में अनुभवजन्य 'आदत' का ही परिणाम है। इस अनुभवजन्य आदत से प्रेरित होकर ही हम यह मान लेते है कि बहुत–सी भौतिक वस्तुएं तथा हमारी मानसिक प्रवृत्तियॉ कारण कार्य के रूप में सम्बधित है और कोई विशेष वस्तु किसी विशेष वस्तु का ही कारण या कार्य होती है। स्पष्ट है कि ह्यूम के विचारो में कारण कार्य सम्बन्ध के लिए हमारी इस अनुभवजन्य आदत का विशेष महत्व है, क्योकिं अन्ततः यही हमारे मन में कारण तथा कार्य में अनिवार्य सम्बन्ध के प्रत्यय को उत्पन्न करती है। इसके महत्व का वर्णन करते हुए वे कहते हैकि समस्त अनुभवजन्य अनुमान आदत के ही परिणाम हैं, तर्कना के नहीं। आदत मानव – जीवन की महान् मार्गदर्शिका है। इसी के कारण हमारा अनुभव हमारे लिये उपयोगी सिद्ध होता है और हम भविष्य में भी उसी प्रकार की घटनाओं की आशा करते हैं जैसी भूतकाल में घटित हुई हैं। आदत के प्रभाव के बिना हम अपनी स्मृति तथा इन्द्रियों के प्रत्यक्षों तक ही सीमित रह जायेंगे और भावी घटनाओं के विषय में कभी कोई अनुमान नहीं लगा सकेंगे।..... हमारे समस्त कर्मों तथा अधिकांशतः चिंतन का भी तुरन्त अन्त हो जायेगा।[5]इस प्रकार ह्यूम के मतानुसार अनुभवजन्य आदत कारण– कार्य में अनिवार्य सम्बन्ध के प्रत्यय का ही नहीं अपितु हमारे समस्त कर्मों तथा वस्तु तथ्य सम्बन्धी चिंतन का भी मूल आधार है।

प्रस्तुत खण्ड में अभी तक हमने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि ह्यूम के विचार में कारण तथा कार्य में किस प्रकार का सम्बन्ध है और हमें ऐसा क्यों प्रतीत होता है कि कोई विशेष कारण ही सर्वदा एवं अनिवार्यतः किसी विशेष कार्य को उत्पन्न करता है। अब इस प्रश्न के सम्बन्ध में उनके मत पर विचार करना आवश्यक है कि क्या प्रत्येक वस्तु का कोई कारण होना अनिवार्य है। सामान्यतः इस सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है कि जिस वस्तु का प्रारम्भ हुआ है और जो अस्तित्व में है उसका कोई न कोई कारण होना अनिवार्य है। परन्तु ह्यूम का कथन है कि इस सिद्धान्त को हम न तो अनुभव द्वारा प्रमाणित कर सकते और न तर्क द्वारा। उन्होनें इस सिद्धान्त को प्रमाणित करने लिए क्लार्क, लॉक आदि दार्शनिकों द्वारा दिये गये तर्कों का खंडन किया है। उपर्युक्त सिद्धान्त की सत्यता का प्रमाणित करने के लिए क्लार्क तथा कुछ अन्य दार्शनिकों ने यह तर्क दिया है कि यदि बिना कारण के किसी वस्तु का अस्तित्व है तो यह स्वयं अपना कारण होगी, किन्तु यह असम्भव है क्योंकि इसका अर्थ यह है कि स्वयं अपना कारण बनने के लिए यह वस्तु अस्तित्व में आने से पहले ही प्रारम्भ कर चुकी थी। इसी प्रकार उक्त सिद्धान्त के समर्थन में लॉक ने यह तर्क दिया है कि जो वस्तु बिना किसी कारण के उत्पन्न हुई है वह 'असत्' से उत्पन्न हुई होगी, किन्तु 'असत्' किसी वस्तु का कारणनहीं हो सकता। उपर्युक्त दोनों तर्कों के विरूद्ध ह्यूम की मुख्य आपत्ति यह है कि जिस सिद्धांत को प्रमाणित करने के लिए ये तर्क दिये गये है उसकी सत्यता को यह पहले से ही स्वीकार कर लेते हैं – अर्थात् ये पहले से ही मान लेते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कोई कारण होना अनिवार्य है। स्पष्ट है कि इन दोनों युक्तियों द्वारा कारण की अनिवार्यता का सिद्धांत वास्तव में प्रमाणित नहीं होता। इससेह्यूम यही निष्कर्ष निकालते हैं कि कारणता सम्बन्धी हमारा विश्वास किसी युक्ति अथवा तर्क पर आधारित न होकर वस्तुतः हमारी अनुभवजन्य आदत पर ही आधारित है। ऐसी स्थिति में इस विश्वास को तर्कों द्वारा प्रमाणित करने का प्रयास व्यर्थ है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है

कि ह्यूम का यह मत नहीं है कि कोई वस्तु अकारण ही उत्पन्न हो सकती है। उनका कथन केवल इतना ही है कि हम इन्द्रिय प्रत्यक्ष और तर्क द्वारा कारण की अनिवार्यता को प्रमाणित नहीं कर सकते। वे स्वयं यह मानते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कोई कारण अवश्य होता है। इस सम्बन्ध में उन्होनें स्पष्ट कहा है – "यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है कि बिना कारण के किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं हो सकता।[6] इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के लिए कारण की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए ह्यूम ने अपने एक पत्र में लिखा है कि "मैनें यह मूर्खतापूर्ण बात कभी नहीं कही कि कोई वस्तु बिना किसी कारण के उत्पन्न हो सकती है।[7] इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि व्यावहारिक दृष्टि से ह्यूम कारणता के सिद्धान्त मे पूर्णतः विश्वास करते थे। परन्तु उनका यह निश्चित मत है कि सैद्धांतिक दृष्टि से तर्क द्वारा किसी वस्तु के लिए कारण की अनिवार्यता को कभी प्रमाणित नहीं किया जा सकत।[8]

ध्यातव्य है कि ह्यूम कारण – कार्य सम्बन्ध को 'दार्शनिक सम्बन्ध' भी मानते हैं और प्राकृतिक सम्बन्ध' भी। यहाँ इन दोनों सम्बन्धों के अन्तर को कुछ और अधिक स्पष्ट कर देना आवश्यक है। जब भिन्न – भिन्न वस्तुओं में

कारण कार्य सम्बन्ध होता है तो इसे ह्यूम 'दार्शनिकसम्बन्ध' कहते है। परन्तु जब विभिन्न प्रत्ययों में कारण–कार्य सम्बन्ध द्वारा साहचर्य स्थापित होता है तो इसें वे प्राकृतिक सम्बन्ध की सज्ञा देते है। 'दार्शनिक सम्बन्ध' तथा 'प्राकृतिक सम्बन्ध' के रूप में ह्यूम ने कारण की दो भिन्न परिभाषाए दी है। दार्शनिक सम्बन्ध के रूप में कारण की परिभाषा देते हुए उन्होने कहा है कि कारण अपने कार्य से पूर्ववर्ती तथा उसके समीप होता है और कारण के सदृश सभी वस्तुओं तथा कार्य के सदृश सभी वस्तुओं में पौर्वापर्य एवं सामीप्य ये दोनो सम्बन्ध पाये जाते है।[9] प्राकृतिक सम्बन्ध के रूप में कारण की परिभाषा देते हुए वे कहते है कि कारण वह है जो अपने कार्य से पूर्ववर्ती तथा उसके समीप होता है और जो कार्य से इस प्रकार सम्बद्ध रहता है कि एक के फलस्वरूप हमारे मन में दूसरे का प्रत्यय उत्पन्न होता है और एक का सस्कार दूसरे का सजीव प्रत्यय उत्पत्र करता है।[10] इस प्रकार स्पष्ट है कि ह्यूम के अनुसार दार्शनिक सम्बन्ध के रूप में कारण कार्य का पूर्ववर्ती, उसके समीप तथा उससे निरन्तर सम्बद्ध रहता है, परन्तु प्राकृतिक सम्बन्ध के रूप में कारण–कार्य सम्बन्ध हमारे प्रत्ययों में साहचर्य स्थापित करता है जिस पर हमारा कारण कार्य सम्बन्धी सम्पूर्ण अनुमान आधारित है।[11]

यहॉ इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि ह्यूम को अरस्तू द्वारा किया गया कारण का वर्गीकरण मान्य नही है। अरस्तू ने कारण के चार भेद माने है–निमित्त कारण, उपादान कारण, आकारिक कारण तथा प्रयोजन कारण। ह्यूम इनमें से केवल निमित्त कारणो को ही स्वीकार करते है। उनका मत है कि अरस्तू ने कारण के जो अन्य तीन भेद माने है वे वास्तव में कारण नही है। किसी कार्य को उत्पत्र करने वाला कारण केवल एक ही प्रकार का हो सकता है और वह है निमित्त कारण। कारण के विषय में अपनी इस मान्यता को स्पष्ट करते हुए ह्यूम ने लिखा है कि शक्ति अथवा उत्पादकता सम्बन्धी हमारा प्रत्यय किन्ही दो वस्तुओं के सतत सम्बन्ध के फलस्वरूप ही उत्पन्न होता है, अतः जहाँ यह सतत सम्बन्ध पाया जाता है वहाँ केवल निमित्त कारण होता है और जहाँ यह सतत सम्बन्ध नहीं पाया जाता वहाँ किसी प्रकार का कारण नहीं हो सकता।"[12]इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ह्यूम 'कारण' के परम्परागत वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करते।

कारण – कार्य सम्बन्ध के विषय में उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि ह्यूम इस सम्बन्ध को वस्तुगत न मान कर केवल आत्मगत ही मानते हैं फिर भी वे इसे दार्शनिक दृष्टि से विशेष महत्व देते है। उनका मत है कि वस्तु – तथ्य सम्बन्धी हमारा सम्पूर्ण ज्ञान अंततः इसी कारण – कार्य सम्बन्ध पर आधारित है। सभी विज्ञानों तथा मनुष्य के व्यवहारिक जीवन में इस सम्बन्ध का अत्यधिक महत्व हैं। यही कारण है कि ह्यूम ने कारण – कार्य सम्बन्ध के सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर बहुत विस्तारपूर्वक विचारा किया है। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कारण – कार्य सम्बन्ध के विषय में उन्होंनें जो कुछ कहा है वह पूर्णतः नवीन अथवा मोलिक नहीं है। इस विषय से सम्बन्धित उनके मुख्य सिद्धान्त का पूर्वाभास चौदहवीं शताब्दी के एक दार्शनिक निकोलस के दर्शन में प्राप्त होता है। वे यह मानते थे कि हम किसी वस्तु से किसी विशेष वस्तु के अस्तित्व का निश्चित रूप से अनुमान नहीं कर सकतें, क्योंकि सभी वस्तुएँ एक दूसरे से भिन्न हैं और इसी कारण तार्किक दृष्टि से कोई भी वस्तु किसी भी वस्तु को उत्पन्न कर सकती है। हमारे कारणता सम्बन्धी विश्वास की व्याख्या करते हुये निकोलस ने यह भी कहा है कि किन्हीं दो घटनाओं को बार – बार एक दूसरे के पश्चात् घटित होते हुए देखते रहने के कारण ही हम अपने पूर्वानुभव के आधार पर एक को कारण तथा दूसरी को कार्य मान लेते हैं। इस प्रकार वे तर्क अथवा बुद्धि के स्थान पर हमारे पूर्वानुभव को ही कारण – कार्य सम्बन्ध का मूलआधार मानते हैं। हम देख चुके हैं कि ह्यूम ने भी कारण – कार्य सम्बन्ध की यही अनुभव मूलक व्याख्या की है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ह्यूम ने निकोलस के दर्शन का अध्ययन करके उसी के आधार पर अपने कारण – कार्य सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। हम निश्चयपूर्वक यह भीनहीं कह सकते कि वे निकोलस के दर्शन से अवगत थे। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ह्यूम ने कारण–कार्य सम्बन्धी जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है उसे निकोलस लगभग चार सौ वर्ष पूर्व ही निरूपित कर चुके थे। परन्तु इससे दर्शन के इतिहास में ह्यूम के सिद्धान्त का महत्व कम नही होता। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, आधुनिक अनुभववादी और तर्कीय प्रत्यक्षवादी ह्यूम के दर्शन को ही अपने दर्शन का मूल आधार मानते हैं, निकोलस के दर्शन को नहीं।

कारणता और आगमन की समस्या[13]

इस परिप्रेक्ष्य में, ह्यूम के द्वारा उठाई गई आगमन की समस्या भी विचारणीय है। यदि यह प्रश्न किया जाय कि किस साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अग्नि कल भी जलायेगी सूर्य भविष्य में भी पूरब में निकलेगा, कोई वस्तु ऊपर फेंकने पर सदैव नीचे गिरेगी? इत्यादि। परंपरागत रूप से इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए 'प्रकृति की एकरूपता' का सहारा लिया गया है। कारण – कार्य नियम और प्रकृति की एकरूपता में क्या संबंध है? यह प्रश्न विवादास्पद है। जे0एस0मिल0 और बेन जैसे तर्कशास्त्री कारण – कार्य नियम को 'प्रकृति की एकरूपता (Uniformity of Nature) का एक अंग मानते हैं, किन्तु सिगबर्ट और बोसांके कारण – कार्य नियम और प्रकृति की एकरूपता को भिन्न – भिन्न मानते हैं। इसमें से कौन–सा सिद्धांत अधिक तर्कसंगत है ? इस विवाद में उलझना ह्यूम के द्वारा उठाई गई समस्या के लिए प्रासंगिक नहीं है। वस्तुतः प्रकृति की एकरूपता और कारण – कार्य नियम दोनों के परिप्रेक्ष्य में समस्या का स्वरूप एक ही है।

'प्रकृति की एकरूपता' का अर्थ यह है कि – 'प्रकृति समान परिस्थितियों में समान कार्य करती हैं।' ऐसा अतीत (Past) या भूतकाल में सदैव होता रहा है, इसलिए भविष्य में भी ऐसा ही होगा। इस संदर्भ में ह्यूम की समस्या यह है कि "अतीतकाल में प्रकृति की एकरूपता के आधार पर यह कैसे कहा जा सकता है कि भविष्य भी अतीत के समान होगा ?" प्रकृति की एकरूपता स्वयं एक प्रकार के आगमनात्मक अनुमान पर आधारित है। अतः आगमन के आधार पर इसको सिद्ध नहीं किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किसी सर्वव्यापी कथन या प्रतिज्ञप्ति

(Universal Proposition) की सत्यता को उसके अंतर्गत आने वाले प्रत्येक उदाहरण की सत्यता का बिना परीक्षण किये ही स्वीकार किया जा सकता है। हम उसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्वास कर सकते हैं। वास्तव में, ह्यूम आगमन की समस्या के मनोवैज्ञानिक समाधान को स्वीकार करता है। किन्तु समस्या का मनोवैज्ञानिक सामाधान दार्शनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। वस्तुतः समस्या का स्वरूप तार्किक है, परन्तु ह्यूम आगमन की समस्या के तार्किक समाधान को संभव नही मानता है।[14]

वस्तुतः आगमन से प्राप्त ज्ञान संभाव्य सत्य, की कोटि में आता है। उसके आधार पर किसी अनिवार्य संबंध का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है। अतः आगमनात्मक दृष्टि से भी कारण –कार्य में किसी अनिवार्य एवं सार्वभौमिक संबंध की स्थापना नहीं की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, अनुभव के आधार पर कारण – कार्य संबंध की अनिवार्यता एवं सार्वभौमिकता को तर्कतः सिद्ध नहीं किया जा सकता है। अनुभव के द्वारा केवल वर्तमान कालिक घटनाओं को एवं स्मृति के आधार पर अतीतकाल की घटनाओं को जानने का दावा किया जा सकता है। किन्तु अनुभव के आधार पर यही नहीं जाना जा सकता है कि भविष्य में घटित होने वाली घटनाएँ भी अनिवार्यतः अतीतकाल की घटनाओं के समान ही होगी।[15] इस विवेचन से स्पष्ट है कि नियत संयोग और आगमनात्मक अनुमान के द्वारा हमारे मन में अनिवार्यता की एक प्रत्याशा (Expectation) उत्पन्न हो जाती है। यह एक भावना मात्र है जिसकी पुष्टि परंपरा के द्वारा होती है। यह बाद में एक विश्वास (Belief) के रूप में बदल जाती है। इसी से अनिवार्यता के प्रत्यय को बल मिलता है। ह्यूम के अनुसार कारण और कार्य कही जाने वाली घटनाएँ बार – बार घटित होती हुई दिखाई पड़ती है। इसीलिए हम उनमें कारण – कार्य के अनिवार्य संबंध की कल्पना कर लेते है।

ह्यूम के द्वारा कारण – कार्य संबंध की अनिवार्यता और सार्वभौमिकता को स्वीकार न करना अठारहवीं शताब्दी के दर्शन की एक ऐसी क्रांति है जिसका दूरगामी प्रभाव रहा है। प्रसिद्ध दार्शनिक रसेल को बाध्य होकर यह कहना पड़ा कि ह्यूम का दर्शन अठारहवीं शताब्दी के तार्किक औचित्य के दिवालिएपन का प्रतिनिधित्व करता है। अतः इसकी खोज करना महत्वपूर्ण है कि अनुभववादी दर्शन के अंतर्गत ह्यूम की समस्या का कोई सामाधान हो सकता है अथवा नहीं ? यदि ह्यूम के समान आगमनात्मक सिद्धान्त को न माना जाय तो विशेष तथ्यों के निरीक्षण के आधार पर सामान्य वैज्ञानिक नियमों को स्थापित करना दोषपूर्ण होगा। इसप्रकार ह्यूम के संशयवाद से कोई भी अनुभववादी बच नहीं सकता है।[16]

ह्यूम के कारण – कार्य सिद्धान्त को एक अनिवार्य संबंध के रूप में स्वीकार न करने का प्रभाव आगे चलकर जर्मन दार्शनिक काण्ट पर पड़ा। काण्ट ने ह्यूम के द्वारा प्रतिपादित कारणता की अनुभव – सापेक्ष एवं मनोवैज्ञानिक अवधारणा का खण्डन किया। उसके अनुसार कारण – कार्य नियम कोई अनुभवजन्य प्रत्यय नहीं, बल्कि एक बुद्धि–विकल्प हैं। चूंकि कारणता एक बुद्धि – विकल्प हैं, इसलिए यह स्वरूपतः प्रागनुभविक संप्रत्यय है। इसे मनोवैज्ञानिक विश्वास नहीं माना जा सकता है। यद्यपि काण्ट भी यह स्वीकार करता है कि कारण – कार्य संबंध हमारे वस्तु – जगत् के ज्ञान के लिए महत्वपूर्ण है, तथापि वह कारणता को आनुभविक अथवा मनोवैज्ञानिक संबंध नहीं मानता है। दूसरे शब्दों में, ह्यूम कारणता को अनुभव – सापेक्ष और काण्ट उसे एक अनुभव – निरपेक्ष अवधारणा मानता है। इससे स्पष्ट है कि ह्यूम के द्वारा प्रतिपादित कारणता की अवधारणा अनुभववाद का तार्किक परिणाम है जो अनुभववादी मताग्रहों पर आधारित है। इसके विपरीत, काण्ट की कारणता –विषयक मान्यता बुद्धिवादी है। वह अनुभववाद के अन्तर्विरोधों को उद्घाटित करके उसका खण्डन करता है। वास्तव में ह्यूम अनुभववादी ज्ञानमीमांसा को उसके तार्किक निष्कर्ष संशयवाद तक पहुँचा देता है।ह्यूम कारण – कार्य नियम में अविश्वास नहीं करता है, बल्कि वह केवल कारणता की अनिवार्यता और सार्वभौमिकता के तार्किक औचित्य को चुनौती देता हैं अतः यह कहना कि ह्यूम कारणता को नहीं मानता है, एक भूल है। वस्तुतः वह कारण – कार्य नियम का एक नये तरीके से विश्लेषण करता है। उसके द्वारा कारण – कार्य नियम की अनिवार्यता और सार्वभौमिकता के निषेध का निहितार्थ केवल यह है कि इसे अनुभववादी ज्ञानमीमांसा के अंतअर्गत तर्कतः सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. 'ए ट्रिटाइज आफ ह्यूमन नेचर' पृ0 75.
2. वही पुस्तक, पृ0 236
3. वहीं पुस्तक, पृ077
4. ' ऐन ऐन्क्वायरी कन्सरनिंग ह्यूमन अंडरस्टैडिंग, चार्ल्स हैंडेल द्वारा सम्पादित पुस्तक 'ह्यूम – सलैक्शन्ज ' में संकलित, पृ0 150, 151.
5. वहीं पुस्तक, पृ0 135
6. 'ऐन ऐन्क्वायरी कन्सरनिंग ह्यूमन अण्डरस्टैंडिग, पृ0 95
7. 'लैटर्ज' भाग – 1, पत्र – संख्या 91
8. 'ए ट्रिटाइज ऑफ ह्यूमन नेचः पृ0 79
9. वही पुस्तक, पृ0 170.
10. वही पुस्तक, पृ0 170.
11. देखिये, वही पुस्तक, पृ0 94.
12. ही पुस्तक , पृष्ठ संख्या – 171
13. पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास – डा0एच.एस. उपाध्याय, पृ0 231– 233
14. Problem of Justifying Inductive Interence, Essays in Analysis (Ed.) Elice Ambrose, p. 182 – 185
15. ज्ञानमीमांसा के मूल प्रश्न, पृ0 183 – 186
16. A History of Philosophy, Russell,p. 698